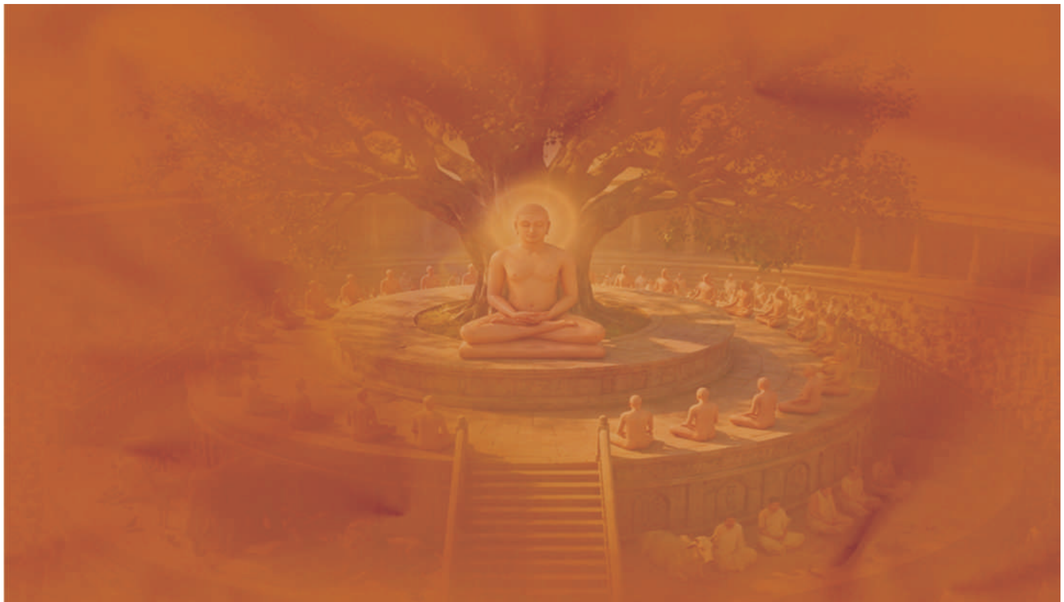

जिनागम पंथ : अनादि से आज तक

(मूल धर्ममार्ग से भ्रमित समाज एवं युवाओं के लिए सम्यक् दिशाबोध)

जिनागम पंथ दिवस

धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व

फाल्गुन वदी एकादशी

दिगम्बराचार्य विमर्शसागर

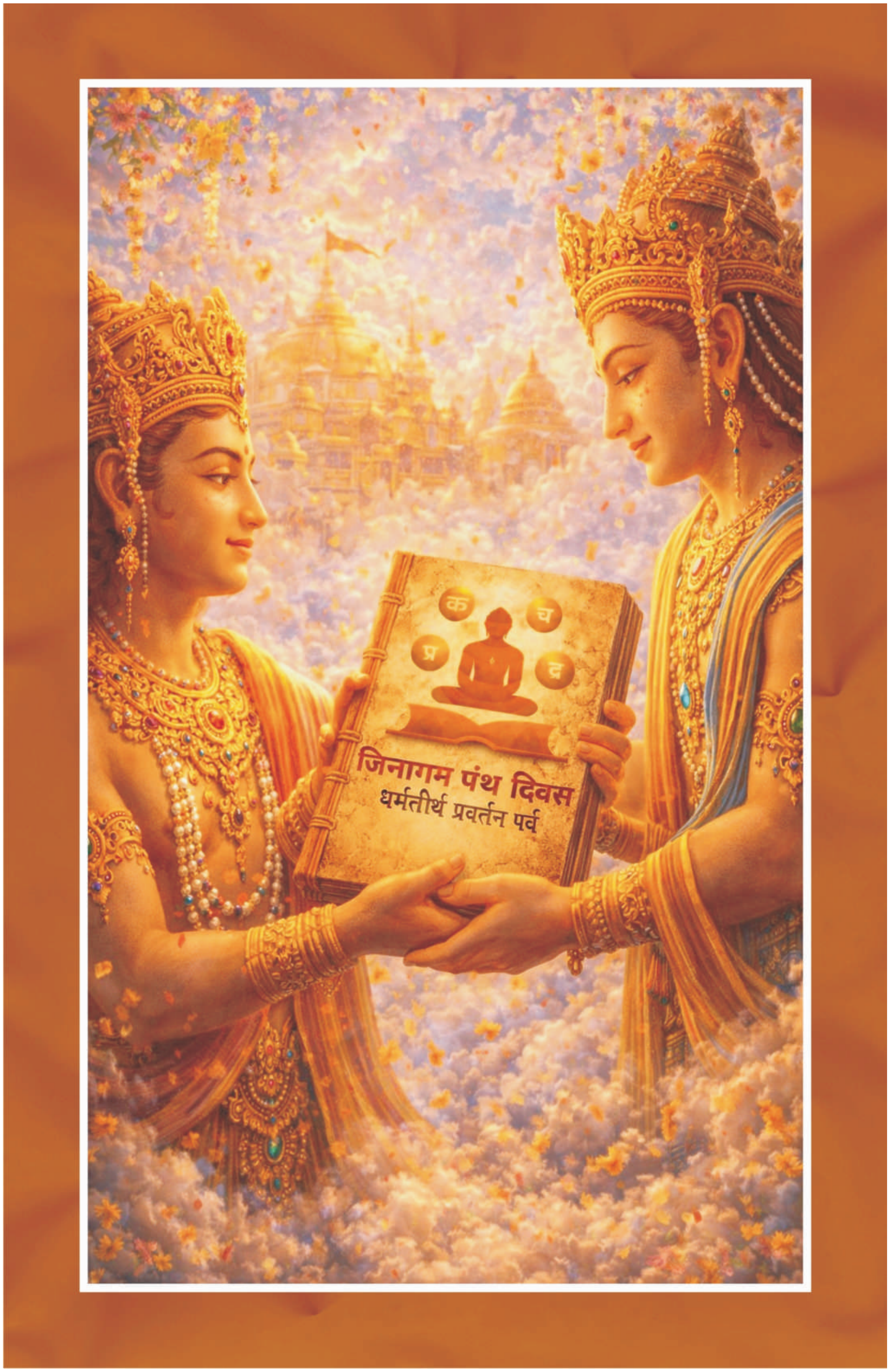

जिनागम पंथ दिवस
धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व

जिनागम पंथ ग्रंथमाला : ग्रंथांक–28

जिनागम पंथ : अनादि से आज तक

(मूल धर्ममार्ग से भ्रमित समाज एवं युवाओं के लिए सम्यक् दिशाबोध)

VOl–1

(प्रयास संवाद का)

दिगम्बराचार्य विमर्शसागर

जिनागम पंथ प्रकाशन

संस्करण : प्रथम–2000 (वी.नि.सं. 2552) (प्रकाशन : 13.02.2026)

© जिनागम पंथ प्रभावना फाउंडेशन

प्रसंग : आदिनाथ धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व–जिनागम पंथ दिवस
(एक कोड़ाकोड़ी सागर 40448 वर्ष कम एक लाख पूर्व वाँ)

जिनागम पंथ दिवस

धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व

फाल्गुन वदी एकादशी

..शास्त्र विक्रय.. ज्ञानावरणस्यास्रवा: श्रुतात्स्याच्छ्रुतकेवली।

शास्त्र विक्रय ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण है तथा शास्त्रदान से श्रुतकेवली होता है ऐसा आगम वाक्य है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला से प्रकाशित श्रुत साहित्य का विक्रय नहीं किया जाता। सभी स्वाध्यायी जीवों के लिए नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाता है।

पुण्यार्थी : श्रीमान् वीरेन्द्र जैन 'सर्राफ'
विपुल जैन–श्रीमती शीतल जैन, आदित्य जैन, अवनी जैन, घट्टा बाजार, बड़ौत (उ.प्र.)

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

पूर्व नाम	:	श्री राकेश कुमार जैन (अपरनाम-बल्लू भैया)
माता	:	श्रीमती भगवती जैन (समाधिस्थ पू.आर्यिका विहान्तश्री माताजी)
पिता	:	पं. श्री सनत कुमार जैन (दो प्रतिमाधारी, समाधिस्थ)
जन्म स्थान	:	जिला टीकमगढ़ के निकट तहसील जतारा (म.प्र.) में मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी, सं. 2030, 15 नवम्बर 1973, दिन-गुरुवार, प्रातः 09:32 बजे
दादा-दादी	:	श्री नाथूराम जैन-श्रीमती बैनीबाई जी जैन
भाई/बहिन	:	अग्रज-राजेश जैन, अनुज-चक्रेश जैन/अग्रजा-श्रीमती कमला जैन अनुजा-बा.ब्र. महिमा दीदी (वर्तमान में आर्यिका विवंदिताश्री माताजी)
शिक्षा	:	बी.एस.सी. (बायोलॉजी)
विवाह	:	बाल ब्रह्मचारी
भाषा ज्ञान	:	संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, बुंदेली, राजस्थानी, अपभ्रंश, अंग्रेजी, हिन्दी, विमर्श एम्बिसा
ब्रह्मचर्य व्रत	:	फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, सोमवार संवत् 2051, दिनांक 27 फरवरी 1995 को प.पू. आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज से सिद्धक्षेत्र अहार जी में।
प्रतिमा	:	पार्श्वनाथ मोक्ष सप्तमी के दिन 3 अगस्त 1995, दिन गुरुवार, ललितपुर (उ.प्र.) में आचार्यश्री विरागसागर जी महामुनिराज से तीन प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये।
ऐलक दीक्षा	:	फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, संवत् 2052, 23 फरवरी 1996 को देवेन्द्रनगर (पन्ना) में आचार्यश्री विरागसागरजी महामुनिराज से ऐलक दीक्षा प्राप्त की और नाम पाया ऐलक विमर्शसागर जी।
मुनि दीक्षा	:	पौष कृष्णा 11, संवत् 2055, दिनांक 14 दिसम्बर 1998, दिन सोमवार को अतिशय क्षेत्र बरासो (भिण्ड) में आचार्यश्री विरागसागरजी महामुनिराज से मुनिदीक्षा के संस्कार प्राप्त किये और नाम पाया मुनि विमर्शसागर जी।
आचार्य पद घोषित	:	13 फरवरी 2005, रविवार को कुन्थुगिरी क्षेत्र पर गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी सहित 14 आचार्य एवं 200 पिच्छिओं के मध्य आचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज द्वारा आपको आचार्य पद घोषित किया।
आचार्य पद	:	मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सं. 2067, दिनांक 12 दिसम्बर 2010, दिन रविवार को बांसवाड़ा (राजस्थान) में आचार्यश्री विरागसागरजी महामुनिराज ने अपने करकमलों से आचार्य पद के संस्कार किये और नाम दिया आचार्य श्री विमर्शसागर जी।

दीक्षायें : 18 मुनि, 20 आर्यिकायें, 3 ऐलक, 9 क्षुल्लक, 7 क्षुल्लिका, अर्धशताधिक प्रतिमाधारी श्रावक-श्राविकायें।

साहित्यिक यात्रा : **काव्य सृजन**– ''जीवन है पानी की बूँद'' महाकाव्य, गीतांजलि, जीवन चलती हुई घड़ी, खूबसूरत लाइनें, आइना, मेरा प्रेम स्वीकार करो, कर लो गुरु गुणगान, वाह क्या खूब कही, सोचता हूँ कभी कभी, समर्पण के स्वर, हे वंदनीय गुरुवर, चटपटे प्रश्न स्वादिष्ट उत्तर।

प्राकृत साहित्य– 'अप्पोदया' प्राकृत टीका, योगसार प्राभृत ग्रंथ पर प्राकृत छायानुवाद, सुद्धप्पाणुवेक्खा, सरूव थुदि।

प्रवचन वृत्तियाँ– रयणोदय (5 भाग), योगोदय (3 भाग), उपासकोदय (2 भाग), देशव्रतोदय, साम्योदय, रत्नोदय, ज्ञानोदय, इष्टोदय (2 भाग), दानोदय (2 भाग) आदि अर्द्धशताधिक वृत्तियाँ प्रकाशित एवं अप्रकाशित।

हिन्दी साहित्य– गूँगी चीख, भरत जी घर में वैरागी, शंका की एक रात, शब्द शब्द अमृत, जनवरी विमर्श, जैन श्रावक और दीपावली पर्व, विमर्श हस्ताक्षर, प्रतिक्रमण एक अनुचिंतन, आओ सीखें जिनस्तोत्र, मानतुंग के मोती, विमर्शांजलि, विरागांजलि आदि अनेक कृतियाँ, प्राचीन आचार्यों के अनेक प्रामाणिक ग्रंथों का पद्यानुवाद, अनेक प्राकृत एवं संस्कृत स्तोत्रों का पद्यानुवाद, अनेकों विधानों का सृजन एवं संस्कृत, प्राकृत, बुंदेली आदि भाषाओं में अनेकों स्फुट रचनायें एवं सहस्राधिक हाइकू कवितायें।

उर्दू साहित्य– ज़ाहिद की ग़ज़लें

मौलिक अवदान– विमर्श लिपि, विमर्श अंक लिपि, विमर्श एम्बिसा।

शोध कार्य : पूज्य आचार्य भगवन् के अनेकों ग्रंथों पर अनेकों राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार एवं आपके ''जीवन है पानी की बूँद'' महाकाव्य, अप्पोदया प्राकृत टीका पर अनेकों शोधार्थियों द्वारा शोध कार्य किया जा रहा है।

प्रेरणा से स्थापित : जिनागम पंथ ग्रंथमाला

आशीष से संचालित :
- राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच (रजि.)
- जिनागम पंथी श्रावक संघ
- जिनागम पंथ समूह, भारत

अनुक्रमणिका

●	आद्य मिताक्षर	6
●	प्राक्कथन	7
●	जिनागम पंथ : अनादि से आज तक (भूमिका)	11
1.	जैनधर्म : अनादि अनिधन	13
2.	सृष्टि-परिवर्तन और कालचक्र की जैनदृष्टि	14
3.	प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ : जीवन संदर्भ और दीक्षा	16
4.	केवलज्ञान और दिव्यध्वनि	18
5.	जिनागम की रचना, संरक्षण और परम्परा	19
6.	श्रमण मार्ग और श्रावक मार्ग : आगमिक संतुलन	21
7.	आचार और अनुशासन : मुक्ति के साधन	22
8.	पंथों का उद्‌भव और वास्तविकता	23
9.	पंथवाद के दुष्परिणाम : धर्म से दूरी	24
10.	जिनागम पंथ : मूल पहचान	26
11.	जैनधर्म का सार्वभौमिक संदेश	27
12.	मंदिर, समाज और संघर्ष : समस्या कहाँ ?	28
13.	साधु और समाज : संतुलन दृष्टि	29
14.	समाधान की दिशा : जिनागम पंथ	29
15.	जैन समाज और भविष्य की दिशा	31
16.	जिनागम पंथ और युवा पीढ़ी	32
17.	युवा-समाधान	33

आद्य मिताक्षर

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत

(अध्यक्षः अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्)

असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल बीतने पर हुण्डावसर्पिणी काल आया। इसके तृतीयकाल के अन्त में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म हुआ। तीर्थंकर ऋषभदेव ने अवधिज्ञान के द्वारा विदेह क्षेत्र में सतत प्रवर्तमान कर्मभूमि की व्यवस्था को जानकार सम्पूर्ण प्रजा को असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या, शिल्प की शिक्षा प्रदान की और जीवन-यापन की कला का बोध कराया। अनन्तर साम्राज्य और राज्यशासन करते हुए नीलाञ्जना देवी के नृत्य करते हुए विलीन होने के दृश्य से वैराग्य को प्राप्तकर एक सहस्र वर्ष कठोर साधना के फलस्वरूप केवलज्ञान को प्राप्त किया।

केवलज्ञान परमज्योति फाल्गुन कृष्णा एकादशी के पावन दिवस को प्रगट हुई थी। यह पावन दिवस ही प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का प्राणीमात्र को लाभ करानेवाला था। महाप्रभु की दिव्यध्वनि दिव्यदेशना ही धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करनेवाली है। धर्मतीर्थ का प्रवर्तन वर्तमान में प्रचलित हुए पंथों से पूर्णरूप से निरपेक्ष था। कालदोष से बाद में पंथों का उद्‌भव हुआ। कोई तेरहपंथ और कोई बीसपंथ मानने लगा।

पंथवाद से दूर जिनमत का भगवान् ऋषभदेवस्वामी के अनुसार ही भावलिंगी संत आचार्य श्री विमर्शसागर महाराज ने **'जिनागम पंथ'** का प्रचार-प्रसार करने का भाव बनाया। तदनुसार 'फाल्गुन कृष्णा एकादशी' प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के केवलज्ञान कल्याणक दिव्यदेशना के दिवस को **'जिनागम पंथ प्रवर्तन दिवस'** मनाने की प्रेरणा प्रदानकर जिनधर्म की प्रभावना का संकल्प लिया है।

'जिनागम पंथ' प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान की दिव्यदेशना है। इस दिन सम्पूर्ण समाज सोल्लास, प्रभावना के साथ, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान के ज्ञानकल्याणक को मनाये, यही मंगल भावना है।

प्राक्कथन

जिनशासन के आकाश में कभी-कभी ऐसे दिव्य नक्षत्र प्रकट होते हैं, जो केवल प्रकाश नहीं देते, अपितु पथ भी दिखाते हैं। जिनका जीवन स्वयं शास्त्र बन जाता है और जिनकी वाणी साधना का प्रवाह। ऐसे ही विरल, तपोनिष्ठ, आत्मदर्शी एवं भावलिंगी संतों की परंपरा में पूज्य आचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज का नाम श्रद्धा, गरिमा और गौरव के साथ लिया जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ उनके उसी दिव्य जीवन-दर्शन, गहन श्रुतसाधना एवं आत्मानुभूत तत्त्वचिंतन का अमृतफल है।

पूज्य गुरुदेव का व्यक्तित्व बहुआयामी होते हुए भी पूर्णतः एकरस आत्मा में स्थित है। उनके जीवन में तप है पर कठोरता नहीं, वैराग्य है पर व्यवहार विरसता नहीं, शास्त्र है पर शुष्कता नहीं, और करुणा है पर आसक्ति नहीं। यही संतुलन उन्हें साधारण संत नहीं, अपितु साक्षात् साधना की मूर्ति बनाता है। वे केवल प्रवचन नहीं करते, वे प्रवचन बनकर जीते हैं। उनका प्रत्येक आचरण, प्रत्येक मौन, प्रत्येक दृष्टि और प्रत्येक शब्द आत्मकल्याण की दिशा में संकेत करता है।

यह ग्रंथ केवल धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व अर्थात् जिनागम पंथ दिवस का विषय-वर्णन ही नहीं अपितु अनुभव-सिद्ध तत्त्वों की प्रस्तुति है। आचार्यवर में द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं प्रथमानुयोग, चारों अनुयोगों का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जो आज के समय में दुर्लभ है। जहाँ अनेक विद्वान किसी एक अनुयोग में निपुण होते हैं, वहीं पूज्य गुरुदेव चारों अनुयोगों को जीवन में उतारकर प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि उनका लेखन मात्र बौद्धिक नहीं, आत्मिक स्पर्शवाला है।

ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय में यह स्पष्ट झलकता है कि गुरुदेव ने जिनागम को पढ़ा ही नहीं, जिया है। इसीलिए वे जिनागम पंथ के माध्यम से जिनागम को कसौटी बनाने की प्रेरणा दे रहे हैं, गुरुदेव की प्रशस्त प्रेरणाओं का यह पावन दस्तावेज निश्चितरूप से जैनसमाज को ही नहीं

अपितु सम्पूर्ण श्रमणसंस्कृति को भी स्थायित्व प्रदान करेगा। पंथों के भ्रम में भटकती युवा पीढ़ी के लिए पूज्य गुरुदेव की यह कृति स्थायी प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेगी।

यह कृति विद्वानों के लिए शोध-सामग्री है, साधकों के लिए साधना-पथ है और सामान्य श्रद्धालुओं के लिए श्रद्धा का दीपक है।

पूज्य आचार्यश्री की सबसे बड़ी विशेषता है—निःस्वार्थ साधना। उन्होंने कभी प्रतिष्ठा की चाह नहीं की, न ही अनुयायियों की संख्या की चिंता की। उनका लक्ष्य एक ही है आत्मा की शुद्धि। यही शुद्धि उनके शब्दों में, उनके लेखन में, उनके मौन में झलकती है। वे सिद्ध करते हैं कि संत बनना कोई बाह्य वेश नहीं, अपितु आंतरिक अवस्था है; और जब चारों अनुयोग जीवन में उतर आते हैं, तब संत बनना नहीं पड़ता, संत हो जाया जाता है।

इस ग्रंथ की विशेषता यह भी है कि इसमें सिद्धांत को केवल कसौटी के सिद्धांत रूप में नहीं रखा गया, अपितु व्यवहार के धरातल पर उतारकर दिखाया गया है। जैनदर्शन एवं धर्म की प्राचीनता को पूज्य गुरुदेव ने इतनी सरल, सुबोध एवं सरस भाषा में प्रस्तुत किया है कि जिज्ञासु पाठक भी उससे जुड़ सके। यह उनकी वाणी की मधुरता, करुणा की प्रवाहिता और ज्ञान की गहराई का ही परिणाम है।

जहाँ तक इस अल्पज्ञ सेवक का प्रश्न है, तो सत्य यह है कि मेरी योग्यता इस ग्रंथ पर कुछ लिखने की नहीं है। मैं न विद्वान हूँ, न शास्त्रज्ञ, न ही साधना के उच्च शिखर को स्पर्श कर पाया हूँ। मेरी तो केवल इतनी ही पात्रता है कि मैं पूज्य गुरुदेव के चरणों की धूल को मस्तक पर धारण कर सकूँ। फिर भी गुरुदेव की कृपा और प्रेरणा से यह साहस कर बैठा हूँ कि उनकी इस प्रेरक अनुपम कृति के लिए कुछ शब्द लिख सकूँ। यह मेरे लिए सम्मान नहीं, अपितु उत्तरदायित्व है; गर्व नहीं, अपितु कृतज्ञता है।

यदि इस प्राक्कथन में कहीं शब्दों की गरिमा दिखाई दे, तो वह मेरी नहीं, गुरुदेव की महिमा है। और यदि कहीं अपूर्णता हो, तो वह मेरे

अल्पज्ञान की सीमा है। मैं पूर्ण विनय के साथ स्वीकार करता हूँ कि पूज्य आचार्य श्री विमर्शसागर जी जैसे महापुरुष पर लिखना सूरज को दीपक दिखाने के समान है। फिर भी भक्त का हृदय जब उमड़ता है, तो शब्द अपने आप बह निकलते हैं।

मेरी प्रार्थना है कि यह **'जिनागम पंथ : अनादि से आज तक'** ग्रंथ केवल पुस्तकालयों की शोभा न बने, अपितु साधकों के और समाज जीवन की दिशा बदले। यह केवल पढ़ा न जाए, जिया जाए। यह केवल समझा न जाए, अनुभूत किया जाए। और यदि इसके माध्यम से किसी एक आत्मा का भी कल्याण होता है, जिनागम कथित मूलमार्ग मिलता है, तो यही पूज्य गुरुदेव की साधना की सच्ची सिद्धि होगी।

मैं पुनः नतमस्तक होकर पूज्य आचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज के चरणों में कोटि-कोटि वंदन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि उनकी करुणा-दृष्टि सदा इस अल्पज्ञ पर बनी रहे, ताकि मैं भी उनके दिखाए पथ पर एक छोटा सा कदम बढ़ा सकूँ।

यह प्राक्कथन की लघुत्तम भेंट
पूज्य श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज को
सादर समर्पित है–

जिनकी दृष्टि ने पंथों के शोर में
जिनागम की वाणी को स्पष्ट सुना,
और जिनके उद्घोष ने यह स्मरण कराया कि
अल्पज्ञ मार्ग बनाते नहीं,
सर्वज्ञ के बताए मार्ग पर चलते हैं।

"जिनागम पंथ : अनादि से आज तक" यह ग्रन्थ जैन समाज को शाश्वत स्मरण कराता है कि हमारा मार्ग मनुष्य-निर्मित पंथों में नहीं, सर्वज्ञ तीर्थंकरों की वाणी में है। विभाजन और मतांधता के इस समय में, यह ग्रंथ हमें मूल स्रोत जिनागम के पास लौटने का निमंत्रण देता है।

यदि हम सत्य, अहिंसा और आगमिक मार्ग को जीवन में प्रतिष्ठित कर सकें, तो न केवल समाज में एकता फलेगी, आत्मकल्याण का द्वार भी स्वयं खुल जाएगा।

जिनागम पंथ जयवंत हो।

श्रमण विव्रतसागर
(संघस्थ : आचार्य विमर्शसागर गुरुदेव)

* * *

जिनागम पंथ : अनादि से आज तक

भूमिका (Preface)

यह ग्रंथ किसी मत–स्थापना या मत-खंडन के उद्देश्य से नहीं लिखा गया है। यह न तो किसी नए पंथ का प्रस्ताव है और न ही प्रचलित पंथों के विरुद्ध कोई घोषणा। यह एक विनम्र, किंतु स्पष्ट प्रयास है- जिनागम में निहित उस मूलमार्ग को स्मरण कराने का, जिसे सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने देखा, जाना और अनुभव से दिखाया।

आज जैनसमाज साधनों और संरचनाओं की दृष्टि से समृद्ध है, परंतु वैचारिक स्तर पर असमंजस की स्थिति में भी है। पंथों के नाम पर जो विभाजन दिखाई देता है, वह जैनधर्म की अनादि परंपरा से मेल नहीं खाता। इसी पृष्ठभूमि में परमपूज्य संघ शिरोमणि, भावलिंगी संत, श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज का उद्घोष **"जिनागम पंथ जयवंत हो"** एक समाधान-सूत्र के रूप में सामने आता है।

इस उद्घोष का आशय किसी नए झंडे के नीचे खड़ा होना नहीं, बल्कि जिनवाणी के नीचे झुकना है। इसका मूल भाव यही है कि हम सब अल्पज्ञ हैं; मार्ग बनाने का अधिकार हमारा नहीं। जो मार्ग सर्वज्ञ ने बताया है **''श्रमण मार्ग और श्रावक मार्ग''** उसी का स्मरण और उसी का आचरण ही जैनधर्म की सुरक्षा है।

विशेष संदेश : फाल्गुन वदी एकादशी– जिनागम पंथ दिवस

फाल्गुन वदी एकादशी केवल एक तिथि नहीं है। यह वह स्मरण-दिवस है, जब प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान के पश्चात् पहली बार दिव्यध्वनि के माध्यम से इस जगत को धर्म का संदेश दिया। यह प्रभु प्रदत्त धर्म का संदेश ही **जिनागम** कहलाया और जिनागम में आया हुआ आत्महितकारी मार्ग, **जिनागम पंथ** के रूप में प्रवर्तित हुआ। उस दिव्यध्वनि का कोई संप्रदाय नहीं था, कोई वर्ग नहीं था, वह जीवमात्र के लिए करुणा का स्वर था।

इसी कारण यह दिन **''जिनागम पंथ दिवस''** कहलाता है। यह किसी नए पंथ की स्थापना का दिवस नहीं, बल्कि उस अनादि मार्ग की स्मृति का दिवस है, जो जिनागम में सुरक्षित है।

आज, जब धर्म के नाम पर पंथों की पहचान प्रमुख हो गई है, तब यह दिवस हमें स्मरण कराता है कि हमारी मूल पहचान न तो तेरह पंथ है, न बीस पंथ, न किसी अन्य नाम से जुड़ी है। हमारी पहचान केवल एक है- **जिनवाणी मार्ग के अनुयायी**।

जिनागम पंथ दिवस का संदेश सरल है–

- पंथों से ऊपर उठकर जिनागम को केंद्र में रखें।
- व्यक्ति और परम्परा से पहले जिनागम को कसौटी बनाएँ।
- राग-द्वेष छोड़कर आत्महित की दिशा में बढ़ें।

यदि फाल्गुन वदी एकादशी का यह दिवस हमें केवल उत्सव नहीं, आत्मचिंतन का अवसर दे सके, तो यही इस दिवस की सच्ची आराधना होगी।

यह ग्रंथ जैन और अजैन सभी पाठकों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। जैन पाठक के लिए यह आत्मपरीक्षण का निमंत्रण है, और अजैन पाठक के लिए जैनधर्म की तात्त्विक, तर्कसंगत और करुणामय पहचान। यदि यह ग्रंथ पाठकों को जिनागम की ओर, और जिनागम के माध्यम से आत्मा की ओर उन्मुख कर सके, तो इसका प्रयोजन पूर्ण माना जाएगा।

जिनागम पंथ जयवंत हो।

विमर्शानुरागिनी

आर्यिका विमर्शिताश्री

(संघस्थ : आचार्य विमर्शसागर गुरुदेव)

* * *

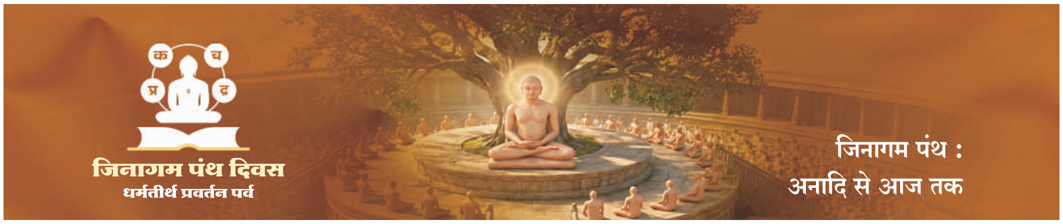

विमर्श-1

जैनधर्म : अनादि अनिधन

जैनधर्म किसी ऐतिहासिक कालखंड में उत्पन्न मत या संप्रदाय नहीं है। यह किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा स्थापित व्यवस्था भी नहीं है। जिनागम के अनुसार धर्म आत्मा का स्वभाव है। जो स्वभाव है वह बनाया नहीं जाता, केवल जाना जाता है। इसलिए जैनधर्म को अनादि अनिधन कहा गया है। **अनादि–** जिसका कोई आरंभ नहीं। **अनिधन–**जिसका कोई अंत नहीं।

यह बात केवल आस्था का विषय नहीं है, बल्कि जैनदर्शन की तार्किक स्थापना है। यदि संसार अनादि है, यदि जीव और अजीव दोनों अनादि हैं, तो फिर धर्म जो जीव के शुद्धस्वरूप की पहचान कराता है वह भी अनादि ही होगा।

जैनधर्म में ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं माना गया। तीर्थंकर सृष्टि के निर्माता नहीं, बल्कि सृष्टि के यथार्थस्वरूप को देखने-जाननेवाले और जगत को दिखानेवाले होते हैं। वे स्वयं दु:खमय संसार सागर से तिरते हैं और दूसरों को तिरने का मार्ग बताते हैं। यही कारण है कि **जैनधर्म में किसी सृष्टिकर्ता-हर्ता आदेशात्मक ईश्वर की कल्पना नहीं, बल्कि विवेकशील आत्म-साधना पर बल है। जिससे आत्मा को परमात्मा बनाया जाता है।**

अनादि जैनधर्म का अर्थ यह भी है कि यह धर्म समय के साथ बदलता नहीं, बल्कि समय के प्रभाव से उसका पालन कमजोर या प्रबल होता रहता है। कालचक्र के परिवर्तन के साथ भी दिगम्बरत्व, पाणिपात्र-आहार (हाथों में भोजन करना), केशलोंच, मयूरपिच्छी आदि

28 मूलगुण रूप आचार की बाह्य-रूपरेखाएँ एवं अंतरंग मूलतत्त्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक शुद्धात्मानुभूति, अहिंसा, आत्मसंयम, विवेक अपरिवर्तित रहते हैं।

आज जब हम स्वयं को किसी स्थापित पंथ-नाम से जोड़ते हैं, तब अनजाने में इस अनादि परंपरा को कुछ शताब्दियों में सीमित कर देते हैं। यह सीमा जैनधर्म की अनादि अनिधन व्यापकता के विपरीत है।

***

विमर्श-2

सृष्टि-परिवर्तन और कालचक्र की जैनदृष्टि

जैनदर्शन में सृष्टि की 'उत्पत्ति' नहीं बल्कि सृष्टि के परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाया गया है। यह लोक न तो किसी ने बनाया है और न ही कभी नष्ट होगा। यह निरंतर परिवर्तनशील है और यही परिवर्तन कालचक्र कहलाता है।

कालचक्र के दो मुख्य भाग माने गए हैं–

(1) उत्सर्पिणी– इस काल में मनुष्य एवं तिर्यंचों (पशु-पक्षी आदि) की आयु, शरीर की ऊँचाई, बल, बुद्धि, वैभव, धर्म आदि बढ़ते जाते हैं।

(2) अवसर्पिणी– इस काल में मनुष्य एवं तिर्यंचों (पशु-पक्षी आदि) की आयु, शरीर की ऊँचाई, बल, बुद्धि, वैभव, धर्म आदि घटते जाते हैं।

प्रत्येक के छह-छह कालखण्ड होते हैं। जो कर्मभूमि और भोगभूमि के भेद से दो भेदरूप भी माने गये हैं।

उत्सर्पिणी काल के भेद	अवसर्पिणी काल के भेद
1. दु:खमा-दु:खमा (जघन्य कर्मभूमि)	1. सुखमा-सुखमा (उत्तम भोगभूमि)
2. दु:खमा (मध्यम कर्मभूमि)	2. सुखमा (मध्यम भोगभूमि)
3. दु:खमा-सुखमा (उत्तम कर्मभूमि)	3. सुखमा-दु:खमा(जघन्य भोगभूमि)
4. सुखमा-दु:खमा (जघन्य भोगभूमि)	4. दु:खमा-सुखमा (उत्तम कर्मभूमि)
5. सुखमा (मध्यम भोगभूमि)	5. दु:खमा (मध्यम कर्मभूमि)
6. सुखमा-सुखमा (उत्तम भोगभूमि)	6. दु:खमा-दु:खमा (जघन्य कर्मभूमि)

इसतरह इन कालखण्डों में सुख-दु:ख, आयु, बल, बुद्धि और धर्म-अधर्म की स्थिति क्रमश: बढ़ती-घटती रहती है।

जैनदर्शन की यह अवधारणा, यह बात स्पष्ट करती है कि किसी काल में धर्म का पालन सहज क्यों होता है और किसी काल में कठिन। आज का समय अवसर्पिणी का दु:खमा काल है, जहाँ राग-द्वेष की प्रबलता, मतभेद और संघर्ष स्वाभाविक रूप से अधिक दिखाई देते हैं।

जैनदर्शन यह भी कहता है कि विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर निरंतर होते रहते हैं और आत्मा की शुद्धि का मार्ग कभी बंद नहीं होता। भरत-ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में तीर्थंकर 24 माने गये हैं, जो दु:खमा-सुखमा काल में जन्म लेते हैं और धर्म के मार्ग को प्रकाशित करते हैं अर्थात् धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं।

तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित धर्म का पालन करनेवाले चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव, नारद, रुद्र, कामदेव आदि महापुरुष इसी काल में जन्म लेते हैं।

कालचक्र की यह समझ हमें विनम्र बनाती है। यह सिखाती है कि हम अपने समय की सीमाओं को पहचानें और यह न मान बैठें कि जो हमें दिखाई दे रहा है, वही सम्पूर्ण सत्य है।

यहाँ स्पष्ट होता है कदाचित् नवीन पंथों का उद्भव काल-परिस्थितिजन्य हो सकता है, परन्तु जिनागम में प्रतिपादित मार्ग अर्थात् जो **जिनागम पंथ** है वह शाश्वत मार्ग कालातीत है।

***

विमर्श-3

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ : जीवन संदर्भ और दीक्षा

श्री आदिनाथ प्रभु, जिन्हें ऋषभदेव के नाम से भी जाना जाता है जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर हैं। उनका इतिहास केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक जीवन में भी क्रांतिकारी है।

- **पूर्वभव एवं तीर्थंकरत्व–**

जिनागम में आदिनाथ प्रभु का संबंध दसवें पूर्वभव विदेह क्षेत्र के गंधिल नामक देश की अलका नगरी से बताया गया है। जहाँ उनका राजा महाबल के रूप में जन्म हुआ। उनके पूर्वभवों में अनेक घटनाएँ थीं, जिनसे ऊपर उठकर वे प्रथम तीर्थंकर की नियति में पहुँचे। उन्होंने गुरु-शिष्य परंपरा का मार्ग पुनः स्थापित किया एवं तर्क-विश्लेषण और आगम वाणी के आदर्श से अनेक मिथ्यामार्गों, मिथ्यामतों, मिथ्यादृष्टियों का खण्डन किया। उन्होंने सर्वप्रथम अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के मार्ग को दृढ़ता से स्थापित किया।

- **आदिनाथ प्रभु का गर्भावतरण–**

तीर्थंकरों का गर्भावतरण अत्यंत विलक्षण बताया जाता है। उनकी माता मरुदेवी ने 16 स्वप्नों में अनेक शुभ संकेत देखे, जिनसे यह सूचना मिली कि उनका पुत्र इससमय का प्रथम तीर्थंकर होगा। इन स्वप्नों के फलानुसार प्रभु का जन्म एक महान आत्मा के रूप में हुआ और जगत को धर्म का संदेश देने का युग प्रारंभ हुआ, यही संदेश **जिनागम पंथ** कहलाया।

- **जन्म कल्याणक महोत्सव –**

चैत्र कृष्ण नवमी के सूर्योदय पर आदिनाथ प्रभु का जन्म अयोध्या नगरी में हुआ। इस शुभ अवसर पर सौधर्मादि देवताओं द्वारा सुमेरु पर्वत पर प्रभु का जन्माभिषेक किया गया। घंटानाद, सिंहनाद, शंखनाद, भेरीनाद और दिव्य रत्नवृष्टि की घटनाएँ प्रकट हुई, दसों दिशाओं सहित सम्पूर्ण मनुष्यलोक ही नहीं, बल्कि त्रिलोक में मंगल-ध्वनियाँ गूँजीं और संसार में आनंद की लहर दौड़ गई।

- **गृहस्थ जीवन और परिवार–**

अंतिम कुलकर सम्राट नाभिराय के पुत्र भगवान ऋषभदेव ने पहले गृहस्थ जीवन जिया, जिसमें उन्होंने भरत, बाहुबली जैसे पुत्रों को भी न्यायनीति, राजनीति एवं संस्कृति की शिक्षा दी। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुये। इन्हीं **चक्रवर्ती भरत के नाम से** अजनाभवर्ष का नाम **भारतवर्ष** प्रसिद्ध हुआ।

महाराज ऋषभदेव ने अपनी ब्राह्मी-सुन्दरी जैसी पुत्रियों को क्रमशः ब्राह्मी शब्दलिपि एवं अंकलिपि की शिक्षा देकर सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा का उद्घोष किया। वह गृहस्थावस्था में भी अत्यन्त संतुलन से जीवन-यापन करनेवाले राजा थे। वे नीलांजना नामक अप्सरा का मरण देख आत्म-उत्थान के लिए अविरल तप की ओर आकर्षित हुए और अंततः वैराग्य का मार्ग अपनाया।

- **वैराग्य और दीक्षा–**

आदिनाथ प्रभु ने जीवन में सुखपूर्वक भोगों का अनुभव करते हुए भी दिव्य भोगमय जीवन को त्याग दिया। उन्होंने सभी परिग्रहों का त्याग कर दिया और पंचमुष्टि केशलोंच करके सर्व परिग्रह-रहित दिगम्बर जैन

महामुनि का रूप धारण किया। सिद्धार्थ वन में वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए उन्होंने दीक्षा स्वीकार की और जीवन को आत्मशुद्धि की ओर मोड़ दिया।

***

विमर्श-4

केवलज्ञान और दिव्यध्वनि

- **केवलज्ञान आगमिक परिप्रेक्ष्य–**

आदिनाथ प्रभु का केवलज्ञान जैनदर्शन के चरम लक्ष्य 'निर्वाण' से पूर्व की स्थिति है। केवलज्ञान वह अवस्था है जहाँ आत्मा के समस्त घातिया कर्म-विकार शांत हो जाते हैं। समस्त अज्ञान की परतें हट जाती हैं और आत्मा सर्वदर्शी अर्थात् अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंत-वीर्यमय अवस्था को प्राप्त होता है।

- **केवलज्ञान स्थल और वटवृक्ष–**

एक समय महामुनि ऋषभदेव ने प्रयागराज (प्राचीन नाम पुरिमतालपुर) में वटवृक्ष के नीचे स्थित होकर आत्मसाधना की, जिससे उन्हें एक हजार वर्ष के तपश्चरण के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त हुआ। यह स्थान जैनधर्म में अत्यंत पवित्र माना जाता है।

- **दिव्यध्वनि एवं जिनागम संरचना–**

केवलज्ञान के पश्चात् प्रथमबार प्रभु ने ॐकारमय दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्म का उद्घोष किया। दिव्यध्वनि कोई बाह्य शब्दभाषा नहीं, अपितु प्रत्येक जीव के अन्त:करण की क्षमता के अनुसार सुनाई देनेवाली, 718 महा-लघु भाषाओं में परिणमन करनेवाली दिव्य वास्तविकता है। उस दिव्यध्वनि को ग्रहणकर अनेक ऋद्धियों के धारी गणधर परमेष्ठी ने द्वादशांग श्रुतरूप से जिनागम की संरचना की।

- **समवसरण : आत्मीयता का खुला मंच–**

केवलज्ञान प्राप्ति के बाद देवोपुनीत समवसरण की रचना हुई, जहाँ सभी जाति-वर्ग के पुण्यात्मा जीव (मनुष्य, देव, तिर्यंच इत्यादि) एक साथ बैठकर धर्म का अनुभव कर सकें। समवसरण सभा का आशय यह है कि सभी जीवों के प्रति समभाव रखा जाये और धर्म न केवल सुना जाए, बल्कि आचरण के साथ अनुभव-योग्य भी बने।

- **फाल्गुन वदी एकादशी का महत्व–**

फाल्गुन वदी एकादशी का दिन इसलिए विशेष है कि इसी दिन प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त किया और ॐकारमय दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्म का सार्वभौमिक उद्घोष हुआ। जो प्रथम धर्मतीर्थ प्रवर्तन दिवस, प्रथम दिव्यध्वनि दिवस, जिनागम पंथ दिवस के रूप में प्रवर्तित हुआ।

फाल्गुन वदी एकादशी को **'जिनागम पंथ दिवस'** के रूप में मनाने का भाव इसी तत्त्व से जुड़ा है। **यह दिन किसी पंथ-विशेष की स्थापना का नहीं, बल्कि उस मूल मार्ग की स्मृति का दिन है जिसे प्रभु ने बताया और गणधरों-आचार्यों ने सुरक्षित रखा।**

इस दृष्टि से यह दिन हमें यह स्मरण कराता है कि धर्म का केंद्र वास्तव में व्यक्ति, संस्था या परंपरा नहीं, बल्कि जिनागम है।

***

विमर्श-5

जिनागम की रचना, संरक्षण और परम्परा

जिनागम वह शब्दसमूह है जिसमें तीर्थंकर भगवान द्वारा प्रतिपादित तत्त्ववादी शिक्षाएँ संरक्षित हैं। यह जिनागम शब्दसमूह मात्र नहीं, अपितु

दिव्यध्वनि का अनुशासित सांगोपांग संकलन है, जिसे गणधरों ने गूँथा एवं बाद के आचार्यों ने शक्ति अनुसार आचरण कर, पालनकर व्यवस्थित रखा।

- **गणधर : द्वादशांग निबद्धक–**

समोशरण में तीर्थंकर के बाद सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी महापुरुष मुनिसंघ नायक गणधर परमेष्ठी होते हैं। उन्होंने दिव्यध्वनि को द्वादशांग सूत्रों में निबद्ध किया। वे न केवल महाश्रमण थे, बल्कि तीर्थंकर प्रभु के शिक्षा संचालक प्रवक्ता थे। उनकी स्मृति, विवेक और साधना का स्तर इतना प्रबल था कि उन्होंने प्रभु के उपदेशों को शास्त्रीय रूप प्रदान किया।

- **जिनसूत्र : शब्दबद्ध शिक्षा–**

गणधरों ने प्रभु के दिव्य धर्मोपदेश को सुव्यवस्थित रूप से संकलित किया, जिसमें धर्म, ज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, व्यवहार और संघ-व्यवस्था आदि के नियम विवेचित हैं।

- **आचार्य : आगम परंपरा सम्पोषक–**

गणधरों के बाद आचार्यों ने आगम को शिष्य परम्परा में संचालित और संरक्षित रखा। आचार्य न तो स्वतंत्र नियम-निर्माता थे, न राजनैतिक सत्ता थे और न ही साम्प्रदायिक प्रभुत्व रखनेवाले थे, वे स्वयं मोक्षमार्ग पर चलते हुए आगम की व्याख्या, पालन और धारण का दायित्व निभाते थे। यही कारण है कि जिनागम आज तक सुरक्षित और अविच्छिन्न रूप से दिगम्बराचार्य में विद्यमान है।

***

विमर्श-6

श्रमणमार्ग और श्रावकमार्ग : आगमिक संतुलन

जिनागम में धर्ममय जीवन के दो ही मार्ग स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हैं-श्रमणमार्ग और श्रावकमार्ग। ये किसी पंथ की पहचान नहीं, बल्कि आचरण की दो अवस्थाएँ हैं। लक्ष्य दोनों का एक ही है-आत्मशुद्धि। भेद केवल साधना की उच्चता और उत्तरदायित्व का है।

श्रमणमार्ग में पंच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अखंड संयम की अपेक्षा है। यह मार्ग संख्या का नहीं, सामर्थ्य का मापदण्ड है। इसलिए **जिनागम में श्रमणों के लिए अनुशासनात्मक आचार है क्योंकि वे स्वयं उदाहरण होते हैं मात्र प्रचारक नहीं।**

श्रावकमार्ग गृहस्थ जीवन में रहते हुए अथवा गृहस्थ जीवन के त्यागपूर्वक संयम की दिशा देता है। इसमें व्रत, प्रतिमा, दानादि मर्यादा के माध्यम से क्रमिक उन्नति का विधान है। जिनागम पंथ श्रावक से वह नहीं चाहता जो उसकी स्थिति के प्रतिकूल हो; वह केवल इतना चाहता है कि राग-द्वेष घटे, विवेक और मर्यादित जीवन बढ़े।

इन दोनों मार्गों के बीच संतुलन ही जैनधर्म की सामाजिक स्थिरता है। जब श्रमणमार्ग पर श्रावक की अपेक्षाएँ लादी जाती हैं, या श्रावकमार्ग को श्रमण के समान कठोर बनाने का आग्रह किया जाता है, तब विकृति उत्पन्न होती है।

जिनागम का आग्रह स्पष्ट है- **मोक्षमार्ग बदलिए नहीं, अपनी स्थिति समझकर उसी मार्ग पर अपनी शुद्धता बढ़ाइए।**

***

विमर्श-7

आचार और अनुशासन : मुक्ति के साधन

जैनधर्म में आचार का स्थान अत्यन्त ऊँचा है, परंतु आचार को कभी भी लक्ष्य नहीं बनाया गया। आचार साधन है, आत्मा को विकारों से मुक्त करने का। जब साधन स्वयं साध्य बन जाए, तब धर्म औपचारिकता में बदल जाता है।

आगमिक परंपरा में नियम 'बनाए' नहीं गए, बल्कि 'बताए' गए। ये नियम सर्वज्ञ की वाणी से निकले हुए हैं, किसी कालखंड में समाज-सुधार का परिणाम नहीं। इसलिए अल्पज्ञों द्वारा धर्ममार्ग कहकर नए नियम गढ़ना या पुराने नियमों को अपने पक्ष में मोड़ना, दोनों ही जिनागम के विपरीत हैं।

आचार्यप्रवर समन्तभद्रस्वामी कहते हैं–

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।।42।।

जो वस्तुस्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित और संदेह रहित 'जैसा है वैसा ही' जानता है उसको आगम के ज्ञाता गणधरादि देवों ने सम्यग्ज्ञान कहा है।।42।।

आचार्य परंपरा का कार्य अपनी ओर से आगम विरुद्ध नियम जोड़ना नहीं, बल्कि हर परिस्थिति में आगमिक मर्म को सुरक्षित रखना और मूलमार्ग प्रवर्तित करना रहा है। जहाँ भी नियम व्यक्ति-केंद्रित हुए, वहाँ विवाद बढ़े; और जहाँ जिनागम केंद्रित रहे, वहाँ शांति बनी रही।

यह समझ आवश्यक है कि अनुशासन का उद्देश्य केवल नियंत्रण नहीं, चेतना का परिष्कार है।

***

विमर्श-8

पंथों का उद्भव और वास्तविकता

जैनधर्म की अनादि दिगम्बर परंपरा में 'पंथ' शब्द आगमिक मार्ग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किंतु ऐतिहासिक कालखंडों में, विशेष रूप से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दि से लेकर आज तक कुछ आचरणगत विभिन्नताएँ सामाजिक-धार्मिक पहचान का रूप लेने लगीं। यही भिन्नताएँ वर्तमान में प्रचलित श्वेताम्बर, तेरहपंथ, बीसपंथ, तारणपंथ, शुद्धतेरहपंथ, कहानपंथ आदि पंथों में परिवर्तित हुईं।

- **ऐतिहासिक कारण-**

प्राकृतिक परिस्थितियाँ- एक विशेष कालखण्ड में अकाल आदि प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण दिगम्बराचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी सहित 12000 साधु दक्षिण भारत चले गए जिनमें दिगम्बर मुनि चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है, शेष साधु जो उत्तर भारत में रहे आये उनके मूल आचार में भेद उत्पन्न हो जाने से मूलमार्ग परिवर्तित हो गया।

भौगोलिक परिस्थितियाँ- एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाना कठिन था, जिससे एक क्षेत्र में जो परम्परा चल पड़ी, वह वहाँ की नियमित परम्परा बन गयी, दूसरे क्षेत्र में दूसरी परम्परा विकसित हो गयी। साधुजन वर्षों तक आपस में मिल नहीं पाये। जिससे मूल मार्ग परिवर्तित हो गया।

राजनीतिक अस्थिरता और संरक्षण की कमी- जहाँ राजा धर्मप्रिय और सहयोगी होता था, वहाँ साधु-श्रावकचर्या का पालन, श्रमण वसतिका, जिनमंदिर निर्माण, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, ग्रंथ लेखन के कार्य समुचित रीति से होते रहे और मूलधर्म परम्परा सुरक्षित रही।

जहाँ राजा धर्मविरोधी या उदासीन था वहाँ जैनों का राजाश्रय समाप्त हो जाने से मूल धर्मप्रभावना के विशेष कार्य नहीं हो सके और क्षेत्र की परिस्थिति के अनुसार आचार में बदलाव हो जाने से पंथभेद उत्पन्न हो गया।

राजाश्रित धर्मोन्माद के कारण धर्मायतन खण्डित किये जाने के भय से भी आचार परंपरा में परिवर्तन हो गया।

ये कारण परिस्थितिजन्य थे, और इनसे उत्पन्न व्यवस्थायें अस्थायी थीं। समय की मजबूरी थी, धर्म नहीं। समस्या तब उत्पन्न हुई जब इन व्यवस्थाओं को शाश्वत धर्म, आगम का आदेश अर्थात् आगमिक मार्ग मान लिया गया।

- **आगमिक दृष्टि–**

आगम में पंथों की संख्या या नामों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। आगम केवल साधना-पथ का निर्देश देता है। अत: किसी ऐतिहासिक पहचान को धर्म का अनिवार्य तत्त्व मानना, आगमिक दृष्टि से असंगत है।

***

विमर्श-9

पंथवाद के दुष्परिणाम : धर्म से दूरी

जिनागम में **'पंथ'** शब्द का अर्थ शाश्वत धर्ममार्ग है, जो तीर्थंकर महापुरुषों के द्वारा प्रवर्तित है, जैसे–मोक्षपंथ, शिवपंथ, जिनागम पंथ। जबकि **'पंथवाद'** नकारात्मक, संकीर्ण विचारधारा एवं मूल धर्ममार्ग से भटकाव है।

पंथवाद तब उत्पन्न होता है जब साधन साध्य बन जाए और पहचान

साधना से बड़ी हो जाए। इसका प्रभाव केवल वैचारिक नहीं, व्यावहारिक भी होता है।

- **व्यक्तिगत स्तर पर–**

आत्मावलोकन के स्थान पर दूसरों का मूल्यांकन– जब व्यक्ति अपने दोषों पर दृष्टि न देकर दूसरों की कमियाँ ढूँढ़ने लगता है तब आत्मविकास रुक जाता है। आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, ऐसा व्यक्ति धर्म को सुधार का माध्यम न मानकर तुलना और आलोचना का आधार बना लेता है।

अहं और पक्षपात की वृद्धि– पंथवाद के कारण व्यक्ति में अपने पंथ को श्रेष्ठ मानने से अहंकार जन्म लेता है। ''जो मेरा मत मानता है वही सही'' ऐसी विचारधारा जन्म लेती है। इससे विवेक समाप्त होता है, विनम्रता घटती है, निष्पक्ष निर्णय लेने की क्षमता खो जाती है। धर्म की जगह अहंकार प्रधान हो जाता है।

- **सामाजिक स्तर पर–**

मंदिरों और संस्थाओं में संघर्ष– पंथवाद के कारण जो मंदिर शांति और साधना का केन्द्र हैं वे झगड़े और पक्षपात का अखाड़ा बन जाते हैं जिससे समाज का सौहार्द नष्ट होता है। ट्रस्ट और संस्थायें सत्ता–संघर्ष का मंच बन जाते हैं। सेवा, साधना और साधु सम्मान के स्थान पर वर्चस्व और नियंत्रण की भावना हावी हो जाती है।

समाज का खंडित होना– एक ही धर्म और समाज के अनुयायी पक्षों में बँट जाते हैं। आपसी बैर, अविश्वास और दूरी बढ़ती है, भाई–भाई अलग हो जाते हैं, समाज की एकता कमजोर होती है। सामूहिक शक्ति का ह्रास होता है, विभाजित समाज कभी प्रगति नहीं कर पाता।

- **धार्मिक स्तर पर–**

आगम गौण, परंपरा प्रधान– जब परम्परा को आगम से ऊपर रखा जाता है जिनवाणी के स्थान पर साधारण मनुष्य-निर्मित नियम और परंपरायें प्रमुख हो जाती हैं तो धर्म की दिशा सर्वज्ञमार्ग से हटकर अल्पज्ञ समझ की ओर झुक जाती है।

रागद्वेष के क्षय के स्थान पर वृद्धि– धर्म का उद्देश्य रागद्वेष को नष्ट करना है पंथवाद उन्हें और प्रबल कर देता है। जिससे व्यक्ति एक-दूसरे के विरोध में फँस जाता है। साधना के स्थान पर संघर्ष बढ़ जाता है।

ये सभी परिणाम जैनधर्म के मूल उद्देश्य से विपरीत हैं।

***

विमर्श-10

जिनागम पंथ : मूल पहचान

'जिनागम पंथ' किसी संगठनात्मक पहचान का प्रस्ताव नहीं करता। यह केवल कसौटी का निर्धारण करता है कि धर्म का प्रमाण क्या होगा? धर्म की वास्तविक कसौटी क्या है?

वर्तमान में नई परंपरा और आगम के भेद को समझना अनिवार्य हो गया है। जिनागम की कसौटी मात्र बाह्य पहचान नहीं, बल्कि आंतरिक परिवर्तन भी है।

- **कसौटी का सिद्धांत–**

√ **अंतिम प्रमाण :** जिनागम।

√ **मध्यस्थ :** आचार्य परंपरा।

√ **लक्ष्य :** आत्मशुद्धि।

- **तीन सरल परीक्षण–**

  √ क्या हमारा यह आचरण राग–द्वेष को घटाता है?

  √ क्या यह विनय और विवेक बढ़ाता है?

  √ क्या यह आत्मसंयम की ओर ले जाता है?

  यदि उत्तर सकारात्मक है, तो आचरण आगमिक है।

- **उद्घोष का आशय–**

"जिनागम पंथ जयवंत हो" का अर्थ यह नहीं कि कोई नया पंथ बने, बल्कि यह कि जिनागम की सर्वोच्चता स्वीकार की जाए।

***

विमर्श-11

जैनधर्म का सार्वभौमिक संदेश

जैनधर्म की विशेषता यह है कि वह केवल अनुयायी नहीं, साधक बनाता है।

- **अजैन पाठक के लिए–**

अहिंसा : करुणा और सहअस्तित्व– जैनधर्म की अहिंसा केवल हिंसा न करने का सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवमात्र के प्रति करुणा और संवेदनशीलता की दृष्टि है। यह मनुष्य को टकराव के स्थान पर सह–अस्तित्व और सम्मान का मार्ग दिखाती है।

अनेकांत : संवाद और सहिष्णुता– अनेकान्त यह सिखाता है कि सत्य के अनेक आयाम हो सकते हैं। यह विचारों को संघर्ष नहीं बनने देता और मतभेदों के बीच संवाद तथा सहिष्णुता को स्थापित करता है।

अपरिग्रह : संतुलित जीवन– अपरिग्रह सर्वथा उपभोग के निषेध का नहीं, बल्कि सीमा निर्धारित करने का भी मार्ग दिखाता है। यह मनुष्य

को आवश्यकता और लालसा में अंतर बोध कराकर जीवन में संतुलन और संतोष लाता है।

- **जैन पाठक के लिए–**

  √ आत्मपरीक्षण की प्रेरणा।

  √ पंथ से पहले जिनागम को रखने का आग्रह।

इसप्रकार जैनधर्म मानव-मात्र के लिए उपयोगी जीवन-दृष्टि प्रदान करता है।

***

विमर्श-12

मंदिर, समाज और संघर्ष : समस्या कहाँ?

जिनालय साधना का स्थान है, सत्ता का नहीं। जब धर्म आचरण और अध्यात्म से हटकर स्वार्थ साधन का विषय बन जाता है, तब मंदिर भी सामाजिक तनाव का क्षेत्र बन जाता है। यह स्थिति आगमिक नहीं, दृष्टिगत विकृति का परिणाम है।

- **संघर्ष का वास्तविक कारण–**

विवाद आगमिक नियम, व्रत, संयम पालन से नहीं, बल्कि स्थानीय परंपराओं और समूह-मान्यताओं से उपजते हैं। जब इन मान्यताओं को सार्वकालिक और सार्वदेशिक मान लिया जाता है, तब असहमति संघर्ष में बदल जाती है।

- **आगमिक समाधान–**

जिनागम मंदिर को 'अधिकार' नहीं, 'अवसर' बताता है, इसलिए पदाधिकारी भी मंदिर को आत्मशुद्धि का अवसर जानें। जहाँ अधिकार-बोध प्रवेश करता है, वहाँ विनयगुण क्षीण होता है। विनयगुण के क्षय से धर्म का मर्म ओझल होने लगता है।

विमर्श-13

साधु और समाज : संतुलन दृष्टि

जैन परंपरा में आचार्य और साधु परमेष्ठी दीपक के समान हैं- **साधुजन धर्ममार्ग दिखाते हैं, मार्ग बनाते नहीं।** साधुजनों से अपेक्षा सही मार्गदर्शन की है, जिनागम बाह्य आदेश की नहीं।

- **आचार्य एवं साधुपद की भूमिका–**

आचार्य एवं साधुजनों का कार्य **उत्सर्ग-अपवाद मार्ग की मैत्री** के रूप में **जिनागम संहिता** को स्पष्ट करना है, न कि उन्हें अपने अनुसार परिवर्तित करना। जहाँ यह सीमा भंग होती है, वहाँ व्यक्ति-केंद्रित मानसिकता जन्म लेती है।

- **समाज की जिम्मेदारी–**

समाज का दायित्व है कि वह जिनागम को कसौटी बनाए, व्यक्ति को नहीं। आचार्य, उपाध्याय, साधु एवं श्रावकवर्ग भी आगम के अधीन हैं अतः आगम की सर्वोच्चता बनाकर रखें। यह भाव साधुसमूह एवं समाज को विवेकी, विनम्र और संतुलित बनाता है।

वर्तमान में नई परंपरा और आगम के भेद को समझना अनिवार्य हो गया है। जिनागम की कसौटी मात्र बाह्य पहचान नहीं, बल्कि आंतरिक परिवर्तन भी है।

***

विमर्श-14

समाधान की दिशा : जिनागम पंथ

समाधान किसी नए संगठन या नियमावली में नहीं, बल्कि दृष्टि-परिवर्तन में है। **जिनागम पंथ का अर्थ है–** अंतिम प्रमाण के रूप में जिनागम को स्वीकार करना।

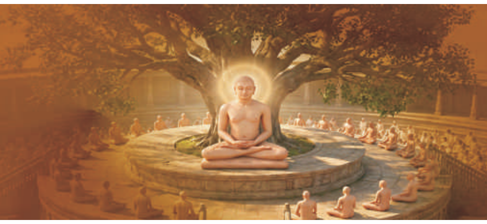

- **व्यक्तिगत स्तर पर–**

आत्मावलोकन– व्यक्ति जब अपनी प्रवृत्तियों को देखने लगता है, तो आलोचना, तुलना और विवाद की प्रवृत्ति स्वतः क्षीण होती है। आत्मावलोकन अहं को गलाकर सच्चे साधक का निर्माण करता है।

राग-द्वेष का क्षय– जैसे-जैसे अपना और पराया भेद मिटता है, मन निर्मल होता है और व्यवहार शांत। राग-द्वेष के क्षय में ही वास्तविक धर्म-जीवन की नींव है।

- **सामाजिक स्तर पर–**

सह-अस्तित्व– विविध विचारों और आचारों के बावजूद परस्पर सम्मान के साथ चलना ही सह-अस्तित्व है। जब हम साथ रहते हैं, तो शक्ति बढ़ती है और मैत्रीपूर्ण व्यवहार फलता-फूलता है।

संवाद और विनय– मतभेद स्वाभाविक हैं, परंतु संवाद उन्हें संघर्ष बनने से रोकता है। संवाद का मूल विनय-विनम्रता है, और यहीं से समाज में सद्भाव उत्पन्न होता है।

- **धार्मिक स्तर पर–**

आगम की सर्वोच्चता– वास्तविक एकता मतों की समानता से नहीं, बल्कि सर्वज्ञप्रभु द्वारा कहे सत्य की स्वीकृति से आती है। जब सब समूह आगम की शरण में आते हैं, तो मार्ग स्वयमेव एक हो जाता है।

व्यक्ति और परंपरा की सीमाएँ– व्यक्ति-मत, परंपरा और आचार कोई अंतिम सत्य नहीं। ये काल-परिस्थितियों से बदलते हैं, परंतु **यथार्थ सदैव वही रहता है, जो आगम में प्रतिपादित है।** सीमाओं को समझने से भ्रम मिटते हैं।

''जिनागम पंथ जयवंत हो'' यह उद्घोष संघर्ष का नहीं, समन्वय का मार्ग है और यही इसकी सार्थकता है।

***

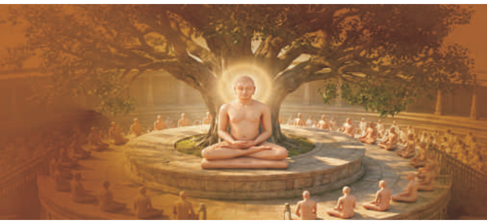

विमर्श-15

जैन समाज और भविष्य की दिशा

आज जैन समाज संसाधनों, शिक्षा और संगठन की दृष्टि से सशक्त है, किंतु वैचारिक एकरूपता के अभाव में भीतर से बँटा हुआ भी है। यह विभाजन आर्थिक या सामाजिक नहीं, बल्कि दृष्टिगत है।

- **वर्तमान स्थिति का यथार्थ–**

  √ धर्म कर्मकांड तक सीमित होता जा रहा है।

  √ जिनागम के स्थान पर परंपरा का आग्रह बढ़ा है।

  √ युवा पीढ़ी प्रश्न पूछ रही है, पर उत्तर स्पष्ट नहीं मिल रहे।

- **आत्ममंथन की आवश्यकता–**

भविष्य की दिशा बाह्य विस्तार से नहीं, आंतरिक स्पष्टता से तय होगी। यदि साधुसंघ, श्रावक और समाज यह स्वीकार कर ले कि अंतिम कसौटी जिनागम है, तो मतभेदों की तीव्रता स्वतः कम हो सकती है।

- **भविष्य की दिशा–**

जिनागम-केंद्रित शिक्षा– धर्म का आधार जनमत नहीं, बल्कि जिनवाणी है, इसलिए भविष्य वही सुरक्षित रख सकेगा, जो शिक्षा और निर्णयों में जिनागम को अंतिम मार्गदर्शक बनाएगा।

संवाद और सह-अस्तित्व की संस्कृति– विभिन्न मत, मात्र मतभेद का कारण नहीं अपितु अवसर हैं सही मार्ग को समझने के, सम्मानपूर्वक संवाद और सहयोग ही समाज को एकजुट और सक्षम बनाते हैं।

साधना को प्रदर्शन से ऊपर रखना– धर्म का मापदण्ड मात्र प्रदर्शनात्मक उत्सवों से नहीं, बल्कि भीतर के परिवर्तन, त्याग, तप और संयम से है, साधना प्रधान जीवन ही भविष्य का मार्ग प्रशस्त करेगा।

***

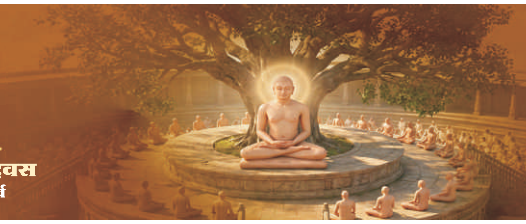

विमर्श-16

जिनागम पंथ और युवा पीढ़ी

आज की युवा पीढ़ी जब तेज रफ्तार भरी जिंदगी, भौतिकतावादी सोच और भ्रम के बीच रास्ता खोज रही है, तब जिनागम पंथ उन्हें विवेकपूर्ण दिशा, आत्मबल और चारित्र प्रदान करता है।

- युवाओं के लिए जिनागम पंथ आत्मानुशासन सिखाता है, अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य जैसे जीवनमूल्य आज भी प्रासंगिक हैं, इस बात पर जोर देता है। वह सिखाता है कि जीवन की सफलता केवल धन-वैभव पाने से नहीं, बल्कि शक्ति अनुसार संयम को अपनाने से है।

- जिनागम पंथ आधुनिक युग में जिनागम की प्रासंगिकता पर बल देता है। सोशल मीडिया के शोर में यह आत्मचिंतन की दिशा देता है। प्रतिस्पर्धा के दौर में मैत्री, करुणा और सह-अस्तित्व का संदेश देता है। भोगवादी सोच के बीच धर्मपालन का आनुपातिक विवेक सिखाता है।

- तीर्थेश वाणी है कि पंचमकाल में युवा ही जैनधर्म के रथ को आगे बढ़ायेंगे। जब युवा साथी जिनागम पंथ को अपनाते हैं, तो वे केवल अपने जीवन को नहीं, बल्कि समाज को भी उज्ज्वल बनाते हैं। युवा ही वह सेतु हैं जो भगवान ऋषभदेव की मूलधारा को भावी पीढ़ियों तक पहुँचा सकते हैं।

अंतिम संदेश यही है कि-

"युवा वही श्रेष्ठ है, जो आधुनिकता के साथ सर्वज्ञकथित मूल सिद्धांतों को न छोड़े, वह मूल सिद्धांतमार्ग जिनागम पंथ है।"

- **जिनागम पंथ की प्रासंगिकता-**

स्वतंत्र विवेक- जिनागम व्यक्ति को श्रद्धा के साथ सोचने और सत्य को स्वयं परखने की क्षमता देता है।

अहिंसक जीवनदृष्टि– पंथवाद से परे अहिंसा, व्यवहार और विचार दोनों में शांतिपूर्ण जीवन का आधार बनती है।

संतुलित उपभोग और आत्मसंयम– जिनागम पंथ सिखाता है कि भोग- उपभोग साधन मात्र हों, साध्य नहीं, अनुशासन, मर्यादायें और संयम ही कल्याण की कुंजी है।

यदि हम अगली पीढ़ी को पंथों का विभाजन नहीं अपितु शाश्वत जिनागम पंथ की दिशा दे पाए, तो जैनधर्म का भविष्य सुरक्षित ही नहीं, उज्ज्वल होगा।

***

विमर्श-17

युवा-समाधान

प्रश्न– पूज्यवर! जिनागम पंथ को 'मैं क्यों मानूँ?' इसकी कोई प्रामाणिक विशिष्टता हो, तो जरूर बताइये?

समाधान– जिनागम पंथ किसी व्यक्ति, संस्था या परंपरा की उपज नहीं, बल्कि तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में आया शाश्वत मार्ग है जो अनुभव और विवेक की कसौटी पर खरी उतरने वाली सर्वज्ञवाणी का संदेश है, यही इसकी प्रामाणिक विशिष्टता है, यह अंधानुकरण नहीं सिखाता बल्कि स्वयं की योग्यता से प्रेम, एकता और सहिष्णुता के मार्ग को समझने का आमंत्रण देता है।

यदि तुम्हारा विश्वास सामाजिक विघटन में नहीं बल्कि आपसी प्रेम, मैत्री, एकता और संगठन में है तो 'मैं क्यों मानूँ' यह प्रश्न ही नहीं रह जाता।

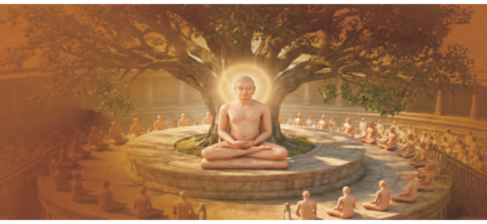

प्रश्न– पूज्यवर! जिनागम पंथ का हमारे जीवन से क्या संबंध है?

समाधान– जिनागम पंथ जीवन के हर स्तर-विचार, व्यवहार और संबंध को संयमित करने की दिशा देता है। यह केवल मोक्ष का नहीं, संतुलित और शांत जीवन जीने का विज्ञान है। आप सभी जिनागम का स्वाध्याय करें और अपनी श्रेष्ठ जीवनशैली का स्वयं ज्ञान प्राप्त करें।

प्रश्न– पूज्यवर! क्या जिनागम पंथ वर्तमान की भौतिकवादी जीवनशैली में उपयोगी है?

समाधान– आज की भौतिकवादी जीवनशैली से ही जीवन में तनाव, असंतोष और संघर्ष बढ़ रहे हैं, ऐसे समय में जिनागम में निहित अहिंसा, अपरिग्रह और आत्मसंयम की दृष्टि पहले से भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

प्रश्न– पूज्यवर! वर्तमान में प्रचलित पंथों की तरह इसे नया पंथ क्यों न माना जाए?

समाधान– नए पंथों की पहचान उनकी नई नियमावली होती है। जिनागम पंथ कोई नया नियममार्ग नहीं है। **जिनागम पंथ का कथन स्पष्ट है– अल्पज्ञ नियम नहीं बनाते; नियम केवल सर्वज्ञ तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि से प्राप्त होते हैं।**

-जिनागम पंथ व्यक्तिकेंद्रित भी नहीं है। नये पंथ किसी न किसी आचार्य, विद्वान, व्यक्ति, घटना, परंपरा या कालखंड से जुड़े होते हैं।

जिनागम पंथ का केन्द्र न व्यक्ति है, न परंपरा, न कालखंड केवल दिव्यध्वनि का सार 'जिनागम' है।

-जिनागम पंथ इसलिए नया पंथ नहीं है, क्योंकि वह पंथवाद बनने का आग्रह नहीं करता। वह केवल यह कहता है– जिस मार्ग पर प्रभु चले, हम भी उसी मार्ग पर चलें।

प्रश्न– पूज्यवर! क्या आप कोई नया समूह बनाना चाहते हैं?

समाधान– नहीं। जिनागम पंथ किसी नए समूह की स्थापना नहीं करता, बल्कि नये समूहों के दुराग्रह से ऊपर उठने का आग्रह करता है। यह संगठन नहीं, दृष्टि है; कोरी पहचान नहीं, मूल की ओर वापसी है।

प्रश्न–पूज्यवर! यदि कोई नियम नहीं होंगे, तो अनुशासन कैसे रहेगा?

समाधान– जिनागम पंथ अनुशासन को बाहरी नियंत्रण से नहीं, आंतरिक विवेक से अपनाता है। जहाँ जिनागम केन्द्र में होता है, वहाँ अनुशासन और संयम स्वाभाविक होता है।

प्रश्न– पूज्यवर! क्या इससे परंपराओं का अपमान नहीं होगा?

समाधान– नहीं। जिनागम पंथ परंपराओं का निषेध नहीं करता, पर उन्हें अंतिम प्रमाण भी नहीं मानता। परंपरा सम्माननीय है, पर जिनागम सर्वोपरि है।

प्रश्न– पूज्यवर! क्या यह विचार समाज को भ्रमित नहीं करेगा?

समाधान– भ्रम वास्तव में जिनागम को सर्वोपरि मानने से नहीं, बल्कि मूलमार्ग से दूर जाने से पैदा होता है। जिनागम पंथ समाज को भ्रम से निकालकर यथार्थ की ओर ले जाता है, भ्रमित नहीं करता।

प्रश्न– पूज्यवर! आज के युवाओं के लिए इसमें नया क्या है?

समाधान– जिनागम पंथ युवाओं को नई पहचान की राजनीति नहीं, सम्यक् जीवन की दिशा देता है, जहाँ असंतोष से उपजी गुटबाजी की संस्कृति नहीं, बल्कि मूल संस्कृति के प्रति जागरूकता है।

प्रश्न– पूज्यवर! क्या जिनागम पंथ किसी एक संप्रदाय के पक्ष में है?

समाधान– नहीं। जिनागम पंथ किसी संप्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि सभी के लिए समानता की शिक्षा देनेवाले मूल-स्रोत जिनागम से जोड़ता है।

प्रश्न– पूज्यवर! यदि सभी अपने-अपने आगम की व्याख्या करेंगे, तो मतभेद नहीं बढ़ेंगे?

समाधान– मतभेद तब बढ़ते हैं जब अहं जुड़ता है। जिनागम पंथ व्याख्या से पहले स्वाध्याय, विनय और संवाद की अपेक्षा करता है।

प्रश्न– इसका अंतिम उद्देश्य क्या है, संगठन या आंदोलन?

समाधान– न संगठन, न आंदोलन, जिनागम पंथ का उद्देश्य केवल **आत्मपरिवर्तन** है। जिनागम को सर्वोपरि मानने के लिए प्रेरणा है, सर्वकल्याण की भावना है।

***

यह ग्रंथ किसी नई पहचान का प्रस्ताव नहीं करता, बल्कि पुरानी स्मृति को जाग्रत करता है। जैनधर्म की शक्ति उसकी अनादि परंपरा में है, न कि हाल के विभाजनों में।

यदि हम जिनागम को केंद्र में रखें, तो पंथवाद स्वयं गौण हो जायेगा। तब न पंथों का दुराग्रह बचेगा, न कोई भ्रम, न ही कोई वाद-विवाद। शेष बचेगा तो आदिनाथ प्रभु की दिव्यध्वनि में आया हुआ सर्व जाति, वर्ग, समाज हितकारी **अनादि अनिधन जिनागम पंथ**।

जिनागम पंथ जयवंत हो।

जागो जागो जैनियो

रचयिता – मुनि विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

हर इक जुबाँ पे अब जिनागम पंथ हो सदा
जयवंत हो जयवंत हो जयवंत हो सदा
जागो जागो जैनियो–2

अरिहंत ने बस एक मोक्ष मार्ग कहा था
हर काल में अनादि से जीवंत रहा था
अरिहंत के उस पंथ पे अब आँच आई है
अब जैन एकता भी जिससे लड़खड़ाई है
अब हम सभी का एकमात्र मंत्र हो सदा
जयवंत हो...

अज्ञानियों के बुद्धिजाल की विचित्रता
पंथों में बाँट दी समाज की पवित्रता
जिस थाल में खाया उसी में छेद किया है
जिनवाणी को पढ़ पढ़ के उसमें भेद किया है
इन सब कुरीतियों का शीघ्र अंत हो सदा
जयवंत हो...

कुछ जातियों में बँट गये कुछ पंथों में बँटे
कतिपय जो शेष थे वो आज संतों में बँटे
अब छोड़ दो अपनों के लिये विष परोसना
इक दूसरे की पूजा पद्धति को कोसना
अब प्रेम का वात्सल्य का बसंत हो सदा
जयवंत हो...

आचार्यों ने जिस पंथ की महिमा बताई है
उपकृत हुये देवों ने जिसकी दी दुहाई है
जिनवाणी माँ की पीड़ा हृदय में समाई है
अब भावलिंगी संत ने अलख जगाई है
आराध्य सबके ऐसे ही निर्ग्रंथ हों सदा
जयवंत हो...

आह्वान...

मेरे प्रिय भारतवासिओ! जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव भारत की आध्यात्मिक चेतना के आद्य प्रवर्तक महापुरुष हैं। भगवान ऋषभदेव ने सम्पूर्ण मानव सभ्यता एवं धर्म संस्कृति का विकास किया।

फाल्गुन वदी एकादशी केवल तिथि नहीं, जैनधर्म के इतिहास का प्रथम सूर्योदय है। वर्तमान अवसर्पिणी काल का वह दिव्य क्षण है, जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान ने कैवल्य प्राप्त किया। प्रथम दिव्यदेशना खिरी, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन हुआ। यहीं से प्रवाहित हुई जिनवाणी, और प्रगट हुआ- आत्मकल्याण का शाश्वत मार्ग- **जिनागम पंथ**।

आज यह पावन तिथि '**जिनागम पंथ दिवस**' के रूप में हमें पुकारती है- आत्मा की शुद्धता, सिद्धांतों की दृढ़ता, धर्म की अखंडता और शाश्वत जिनागम पंथ को अपनाने के लिए।

जिनागम पंथ विश्वबंधुत्व-विश्व मैत्री का गुलदस्ता है। जिनागम पंथ कोई विचार नहीं सर्वज्ञ जिन की वाणी है और सर्वज्ञ वाणी बहस के लिए नहीं होती सिर्फ उस पर चलना होता है।

मैं चाहता हूँ सम्पूर्ण भारतवासी एवं भारत वर्षीय समस्त जैन समाज श्रद्धा और भक्ति भाव से भगवान ऋषभदेव का ज्ञानकल्याणक महोत्सव फाल्गुन वदी एकादशी को ''**धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व**'' के रूप में मनाये। ''**जिनागम पंथ दिवस**'' ही हमारे लिये ''**धर्मतीर्थ प्रवर्तन पर्व**'' का प्रतीक है, जो हमारे जैनधर्म के गौरव और अखंडता को दर्शाता है। यह पर्व जैनधर्म के आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा जैनधर्म के प्रवर्तन की प्राचीनता का संदेश जन-जन तक पहुँचाने का एक विशेष अवसर है।

आइये, हम सभी मिलकर इस दिन को ''**जिनागम पंथ दिवस**'' के रूप में मनाकर जैन एकता का संकल्प लें और जैनधर्म की समृद्ध परंपरा को जीवित रखें।

यह पर्व केवल स्मरण नहीं, जागरण है। यह पर्व केवल परंपरा नहीं, प्रतिबद्धता है।

जिनागम पंथ को जीवन की दिशा बनाना ही इस दिवस का सार है।

जयदु जिणागम पंथो

''जिनागम पंथ जयवंत हो''

दिगम्बराचार्य विमर्शसागर

Scan me for book

ISBN 978-3-16-148410-0

9 783161 484100